International Journal of Applied Research 2016; 2(4): 749-753

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2016; 2(4): 749-753
www.allresearchjournal.com
Received: 26-02-2016
Accepted: 27-03-2016

डॉ. माधवी शर्मा
(प्राचार्य) डी. बी. (पी. जी.)
महाविद्यालय, खेरली (अलवर)

Correspondence
डॉ. माधवी शर्मा
(प्राचार्य) डी. बी. (पी. जी.)
महाविद्यालय, खेरली (अलवर)

स्मृतियों में अर्थशास्त्रीय सिद्धान्त

डॉ. माधवी शर्मा

भारतीय भारतीय वाड्मय में स्मृतियों का अत्यंत सम्मानीय स्थान है, इनमें तत्कालीन समाज के आचार–व्यवहार पर न केवल गंभीर चिंतन है बल्कि उसकी मौलिक गवेषणा के साथ–साथ जीवन के लिए उनकी अपरिहार्यता सिद्ध करने वाली व्याख्याएँ भी मौजूद है, स्मृति ग्रंथो में भी शुक्रनीति, याज्ञवल्क्य स्मृति आदि का कार्यकाल अर्थशास्त्र से पहले का है, मनुस्मृति हालाँकि बाद की रचना है, तथापि राजनीतिक कारणों से उसको दूसरी स्मृतियों की अपेक्षा अधिक प्रसिद्धि मिली है, यद्यपि जिन कारणों से उसको राजनीतिक चर्चा में रखा जाता है, वे याज्ञवल्क्य स्मृति में अधिक तीव्रता या कहें कि कटुता के साथ विद्यमान हैं, जैसा कि पहले कहा गया है मनुस्मृति की रचना कौटिल्य का अर्थशास्त्र लिखे जाने के बाद हुई मगर यदि यह मान लिया जाए कि उसकी ऋचाएं, लिखे जाने से पहले से ही लोक–अनुश्रुति में प्रचलित थी, तब मनुस्मृति के अनुसार भी समितियों को स्वायत्तता प्राप्त थी एक प्रसंग में मनु ने लिखा भी है कि –

गांव या देश के संघों के साथ समझौता करने के बाद, यदि कोई व्यक्ति किसी लोभ या स्वार्थ के कारण उस समझौते की अवमानना करे तो ऐसे व्यक्ति को जेल मे डाल दिया जाए और उस पर जुर्माना भी किया जाए।

उल्लेखनीय है कि मनु ने समाज को चार वर्गो में विभाजित करते हुए राजनय एवं दंडनीति संबंधी व्याख्या में विभिन्न वर्गों के अपराधियों के लिए अलग–अलग सजाएं सुनिश्चित की हैं, जिनमें ब्राहमण को या तो सजा से पूरी तरह मुक्त रखा गया हैं, अथवा चारों वर्णों में उसके लिए न्यूनतम सजा का प्रावधान किया गया हैं, इसके लिए मनु की आलोचना भी की जाती हैं, किंतु श्रेणि के साथ किए समझौते के उल्लंघन को लेकर उसने वर्णभेद की ओर इशारा नहीं किया है, इसका कारण यह हो सकता है कि या तो वह इन आर्थिक सगंठनों को वर्णाश्रम धर्म के बाहर मानता था। इसलिए उस पर विचार करते समय उसने विशुद्ध आर्थिक हितों पर ध्यान दिया था अथवा यह मानते हुए कि अधिकांश श्रेणियां ब्राह्मणेत्तर व्यापारी वर्ग अथवा शिल्पकारों द्वारा संचालित की जा रही थी, जिनमें प्रायः एक ही वर्ण के लोग सम्मिलित होते थे, ऐसी संस्थाओं से उसके द्वारा पोषित वर्णव्यवस्था को कोई खतरा नहीं है, उसने वर्णाश्रम व्यवस्था के प्रतिबंधो को श्रेणियों पर लागू करने में उदासीनता बरती। एक तरह से इसका उसको लाभ ही हुआ।

व्यापारी वर्ग जो उन दिनों अपनी आर्थिक स्थिति को मजबूत बना चुका था, तथा जिसका जनमानस पर प्रभाव भी था, वह उसके समर्थन में बना रहा।

इसका परिणाम यह हुआ कि मनुस्मृतिकाल में इन व्यापारिक संघों की महत्ता और भी बढी। जिसके परिणामस्वरूप गाँव अथवा देश के साथ किए समझौते के उल्लंघन को केवल श्रेणि या वर्ग तक सीमित कर दिया गया। इस बात से ये संकेत भी मिलते हैं कि धीरे–धीरे ही सही उस युग में विकेंद्रीकृत अर्थव्यवस्था की रूपरेखा बन रही थी। मनुस्मृति के टीकाकार मेधातिथि और कुल्लूक भट्ट ने अपने ग्रंथों में इसका स्पष्ट उल्लेख किया है। याज्ञवल्क्य स्मृति में भी गणों की महत्ता को अक्षुण्ण रखने तथा उनसे विश्वासघात करने वाले अथवा उन्हें किसी भी प्रकार का नुकसान पहुंचाने वाले व्यक्ति से समस्त संबंध तोड़ लेने के निर्देश दिए गए है। यह बात भी ध्यान देने की है कि भारत के संदर्भ में श्रेणियों का योगदान केवल आर्थिक कार्यक्रमों तक ही सीमित नहीं था। बल्कि उनकी व्याप्ति धार्मिक और सामाजिक सभी क्षेत्रों में बराबर बनी हुई थी। अतएव याज्ञवल्क्य स्मृति का संदेश सभी के लिए एकसमान है।

सामूहिकता कि भावना को समाजिक की अनिवार्यता बताते हुए तत्कालीन ऋषियों–मुनियों ने उसपर बहुत जोर दिया है। उनका अपना आचरण भी सहयोगी और परस्पर समर्पित जीवन की मिसाल था। आश्रमों जीवन न्यूनतम आवश्यकता और सुख–दुःख में समान सहभागिता के सिद्धांत पर आधारित होता था। उनकी अर्थव्यवस्था पशुशक्ति, शिल्पकर्म और कृषिकर्म पर आधारित थी, जिसमें आश्रम–प्रमुखया गुरू के साथ सभी आश्रमवासी मिलजुलकर खेती करते थे, उससे होने वाली आय से ही सभी का भरण पोषण होता था। कई स्थानों पर आश्रमों को गाय, स्वर्णादि दृव्य दान में देने का भी उल्लेख है। बावजूद इसके समाज में प्रतिष्ठा उन्हीं आश्रमों की थी, जो आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होते थे, उल्लेखनीय है कि भारतीय सांस्कृतिक परम्परा में व्यक्तिगत और आर्थिक उपलब्धियों को उल्लेखनीय कभी माना ही नहीं

गया। उनके स्थान पर यहां मोक्ष अर्थात् मुक्ति की कामना पर जोर दिया गया है। जिसे सभी वर्गों के बीच समान रूप से मान्यता प्राप्त है। याज्ञवल्क्य स्मृति में गण के अधिकारों को प्रमुखता दी गई है। उसके अनुसार–

समूह द्वारा जो कानून अथवा नियम बनाए गए हों, यदि राजा के अपने कानूनों द्वारा उनका विरोध न होता हो तो राजकीय कानूनों के समान उनकी भी संरक्षा की जानी चाहिए । यदि कोई व्यक्ति गण के अधिकार को बाधा पहुचाए अथवा उसके साथ किए गय किसी समझौते का उल्लंघन करे, तो उस पर पर्याप्त जुर्माना किया जाना चाहिए । सामूहिक हितों को ध्यान में रखते हुए सबको समूह द्वारा बनाए गए नियमों का पालन करना चाहिए कि सामूहिक कार्य से उसके पास पहुँचे लोगों के काम पूरा होने पर। विदा होते समय उनको दान और मान के साथ विदा करे। उधर समूह के कार्य से राजा के पहुँचे लोगों का भी कर्तव्य है कि वे सामूहिक हित से प्राप्त धन केा समूह को अर्पण कर दें। जो स्वयं अर्पण न करें उस पर ग्यारह गुना दंड लगया जाए । इन समूहों के कार्यचिंतक ऐसे व्यक्ति होने चाहिए, जो धर्म के ज्ञान, शुचि एवं लोक से परें हों समूह का हित चाहने वालों को चाहिए कि उनके वचन को क्रियान्वित करे। यह विधि, श्रेणि, निगम और पाषंड सभी प्रकार के समूहों के लिए है। राजा इसके भेद की रक्षा करे–जो परंपरा चली आ रही हो, उसका सभी से पालन कराए।

प्राचीन भारत के अर्थशास्त्रियों में शुक्राचार्य और बृहस्पति के नाम बहुत सम्मान के साथ लिए जाते हैं। दोंनो ही प्रखर विद्वान और कालजयी चिंतक थे, जिन्होंने आर्थिक समितियों पर खुलकर विचार किया था, उनकी उपयोगिता को दर्शाते हुए उनकी स्थापना एवं विकास पर जोर दिया तथा राज्य को उन्हें यथासंभव सहायता उपलब्ध कराने के निर्देश भी दिए । अर्थशास्त्र के आदि आचार्य माने जाने वाले बृहस्पति ने आर्थिक विषयों को अपने विवेचन, चिंतन का मुख्य आधार बनाया यह बात अलग है कि उनका अधिकांश चिंतन भारतीय समाज में व्याप्त वर्णवाद को प्रश्रय देने वाला और परंपरावादी किस्म का है। हमें यह मानने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए कि वर्णाश्रम धर्म को लेकर आचार्य बृहश्पति ने भी तत्कालीन वर्ण–भेद संबधी मान्यताओं का समर्थन किया। शायद इसी कारण उन्हें पर्याप्त प्रतिष्ठा से वंचित रहना पड़ा है। उनका आर्थिक चिंतन तत्कालीन वर्चस्ववादी शक्तियों की अपेक्षाओं के अनुकूल था, जिससे तर्काधारित ज्ञान–विज्ञान के प्रति जिज्ञासा के स्थान पर रूढ़िवाद को पांव जमाने का अवसर मिला। बावजूद इसके उनकी अप्रतिम मेधा का लोहा हमें मानना ही होगा। उन्होनें अर्थशास्त्र में व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाने पर जोर दिया है। एक स्थान पर वे लिखते है कि –

बृहस्पति के आर्थिक विचारों में साम्राज्यवादी ढाँचे को मजबूत बनाए रखने की भावना प्रकट हुई है.....ब्राह्मणवादी विचारधारा का समर्थन हुए वे वर्णाश्रम धर्म की रक्षा करने का आव्हान करते है। सामाजिक स्तरीकरण को प्राकृतिक बताते हुए वे अन्याय और अनाचार का पक्ष लेने से भी नहीं चूकते। दुष्ट एवं दोषी ब्राह्मण को भी अवध्य बताकर वे समाज के एक वर्ग को अतिरिक्त रूप से अधिकार–संपन्न बनाने का कार्य करते है। यह वर्गीय दृष्टि आज के वैज्ञानिक समाज में भले ही अर्थहीन हो चुकी हो, किंतु एक समय में स्थिति इतनी ज्यादा पेचीदा और गंभीर थी कि भारतीय समाज में एक पराश्रित/परजीवी किस्म का वर्ग, शताब्दियों तक दूसरों की मेहनत और संसाधनों के दम पर मौज उडाता रहा।

भारत के प्राचीन अर्थशास्त्रियों में शुक्राचार्य का योगदान भी उल्लेखनीय है। मौलिकता की दृष्टि से उनका योगदान आचार्य बृहस्पति से भी बढ़कर है। उनका अर्थदर्शन कहीं अधिक आधुनिक एवं तर्काधारित है। इसी कारण वे भारतीय आर्थिक चिंतन के पितामह माने जाते है। भारतीय धर्मशास्त्रों के अनुसार शुक्राचार्य को 'असुरों का गुरू' माना गया है। लोकश्रुति में असुर को देवविरोधी और घृणा का पात्र माना गया है, वस्तुतः असुर (अ+सुर) से तात्पर्य उन लोगों से था, जो वैदिक कर्मकांड के विरोधी थें। ध्यातव्य है कि वैदिक सभ्यता मुख्यत पशुचारण व्यवस्था थी। जबकि असुर, जिनमें अधिकांश संख्या भारत के मूलनिवासियों की ही थी, कृषिकर्म में पूर्ण दक्षता प्राप्त कर चुके थे। इसलिए उनकीअर्थव्यवस्था में स्थायित्व अधिक था। उनके विचारों में यथास्थतिवाद एवं परंपरा के पोषण की अपेक्षा व्यावहारिक अधिक है। शायद इसी कारण हमें आचार्य बृहस्पति की अपेक्षा शुक्राचार्य के विचार कहीं अधिक व्यावहारिक एवं तर्कसंगत नजर आते है। अर्थशास्त्रीय मान्यताओं की सैद्धांतिक पुष्टि के लिए सर्वप्रथम शुक्राचार्य ने ही मूल्य की परिभाषा की थी, जो आज करीब 2600 वर्ष बाद भी लगभग ज्यों–की–त्यों प्रचलन में है। मूल्य का 2600 वर्ष पूर्व इतना सटीक एवं प्रामाणिक विवेचन किसी अन्य विद्वान ने ही किया। मूल्य को परिभाषित करते हुए शुक्राचार्य ने लिखा है कि–

'जिसके माध्यम से कोई वस्तु प्राप्त होती है, वही उसका मूल्य हैं। अर्थ अथवा मूल्य वस्तु के सुलभ अथवा असुलभ होने तथा गुण या अगुण और लोगों की कामना अथवा इच्छा के अनुसार घटता–बढ़ता रहता है।'

आचार्य शुक्र मूल्य को दो तरह देखते थे– एक तो मूल्य अथवा मूल्यक, दूसरा अर्थक। मूल्य अथवा मूल्यक वह खर्च था जो किसी वस्तु को खरीदने के लिए किया जाता है। जिसे क्रेता वांछित वस्तु के बदले में विक्रेता की सहमति होने पर उसे प्रदान कर वस्तु का स्वामित्व खरीदता है। वस्तु का मूल्य उसकी उपलब्धता एवं मांग के आधार पर घटता–बढ़ता रहता है। अर्थ की विशेषता वस्तु की उपयोगिता मे निहित रही है। कोई वस्तु जिस कार्य के निमित्त एवं अपेक्षित है, उसे पूरा करने में जितनी सामर्थ्यवान वह उतनी ही मूल्यवान भी समझी जाएगी। दूसरे शब्दों में कोई वस्तु जितनी अधिक उपयोगी होगी, वह उतनी ही अधिक मूल्यवान भी मानी जाएगी। कात्यायन और शुक्राचार्य की भांति आचार्य कामंदक भी विद्वान अर्थशास्त्री थें। हालांकि अर्थशास्त्र संबंधी उनकी स्थापनाएं बहुत कुछ आध्यात्मिक किस्म की है। उन्होंने अर्थशास्त्र को धर्म का ही उपांग माना है। उनका मानना था कि अर्थशास्त्र में धर्म की प्रतिष्ठा होनी चाहिए । दूसरे शब्दों में आर्थिक महत्व के विषयों की विवेचना के लिए धार्मिक मान्यताओं तथा रीति–रिवाजों का पूरा ध्यान रखना चाहिए ।

ये तमाम अवधारणाएं अलग–अलग दिखती हुई भी एक दूसरे से संबधित हैं तथा तत्कालीन समाज के भीतर प्रचलित अलग–अलग वैचारिक धाराओं तथा अपने समाज की परिस्थतियों का खुलासा करती हैं। आचार्य बृहश्पति 'देवताओं के गुरू' थे। देवसमाज असुरों के समाज की अपेक्षा संगठित तथा आर्थिक रूप से सम्पन्न था। अपने आप में संपूर्णता का बोध लिए हुए । जो बाकी समाजों को खुद से हेय मानता था और इसी आधार पर दूसरों पर अपनी संस्कृति लादने के लिए सतत प्रयत्नशील रहता था। इसलिए उनके चिंतन में व्यावहारिकता के स्थान पर उपदेशात्मकता अधिक नजर आती है। इसके विपरीत शुक्राचार्य जिस असुर समाज के निर्देशन का गुरूत्व–भार संभाले हुए थे, वहां पर आंतरिक लोकतंत्र की भावना बहुत प्रिय थी। शिल्पकलाओं के विकास में इस वर्ग का योगदान सराहनीय रहा है, जो कालांतर में व्यापारिक विकास का मुख्याधार बनी स्पष्ट है कि आर्थिक एवं समाजिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए पारस्परिक सहयोग की पंरपरा बहुत पहले शुरू हो चुकी थी। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी श्रेणियों का वर्णन है, जिन्हें आधुनिक सहकारिताओं का आदिकालीन रूप में माना जा सकता है। यहीं नहीं कौटिल्य मजदूर समितियों का भी उल्लेख करते हैं, जो परस्पर संगठित होकर कार्य करते थे और प्राप्त मजदूरी को आपस में बाँट लेते थे–

'एक साथ रहने, साथ–साथ कार्य करने वाले शिल्पकर्मी समुत्थान अर्थात अपने समूह के कल्याण के लिए एकजुट होकर व्यापार–कर्म अपनाते हैं और उससे हुई आय को आपस में बांट लिया करते हैं।'। इस प्रकार समुत्थारक का आशय ऐसे गतिवान संगठन से है जिसके सदस्य परस्पर संगठित होकर सामूहिक लक्ष्यों के लिए कार्य करते थे। नारद स्मृति हालांकि बाद की रचना है, जिसमें व्यावहारिक जीवन की अनेक समस्याओं पर विचार किया गया है। उसमें भी सहयोग एवं सहकार की महत्ता पर प्रकाश डाला गया है। वहाँ भी समुत्थान की उपयोगिता पर बल देते हुए संगठित होने तथा एक–दूसरे के कल्याण के लिए सहकार करने की आवश्यकता पर जोर दिया है–

'वणिकगण जहाँ संगठित होकर कार्य करते हैं, उसे संभूय समुत्थान कहा जाता है। लाभ की कामना से जब कोई कार्य अपनी ओर से किया जाए तो उसका आधार अपनी ओर से लगाया हुआ धन ही होता है। इसी हिस्से के आधार पर प्रत्सेक हिस्सेदार को लाभ का उपयुक्त अंश प्रदान किया जाना चाहिए । लाभ व्यय और वृद्धि–तीनों का अंश प्रत्येक हिस्सेदार पर उसके हिस्से के अनुसार पड़ना चाहिए ।'

समूह की सफलता के लिए यह भी आवश्यक है कि उसके सदस्यों के बीच एकता के साथ–साथ उनका मानसिक स्तर एक जैसा हो, उनमें अटूट विश्वास एवं संपूर्ण सांगठनिक चेतना हो। इससे आपस में तालमेल कायम रखने के साथ–साथ कार्यक्रमों के निर्माण एवं उनके संचालन में मदद मिलती है। नारद स्मृति में चतुर एवं कुशल व्यापारियों को मूर्ख और आलसी व्यक्तियों के साथ मिलाकर काम न करने की सीख दी गई है। इसके स्थान पर अपना लाभ–हित देखते हुए आचरण करने का फैसला किया गया है। आधुनिक अर्थशास्त्री भी अपना लाभ –हित देखते हुए आचरण करने की सलाह देते है। सामूहिकता की भावना को सामाजिकता की अनिवार्यता बताते हुए तत्कालीन ऋषियों–मुनियों ने उस पर बहुत जोर दिया है। उल्लेखनीय है कि भारतीय सांस्कृतिक परंपरा में आर्थिक उपलब्धियों को बहुत ज्यादा उल्लेखनीय कभी माना ही नहीं गया। उनके स्थान पर मुक्ति की कामना पर जोर दिया गया है। लेकिन यह मान लेना कि व्यावहारिक स्तर पर भारतीय मनीषी पूर्णतः निरपेक्ष एवं चिंतन–शून्य थें, लौकिक विषयों की ओर उनका कोई रूझान ही नहीं था, अनुचित होगा। अगर ऐसा होता तो भारतीय कलाओं का विकास अधूरा ही रह जाता। बौद्धधर्म के विकास के पीछे वैदिक धर्माचार्यों द्वारा थोपे गए कर्मकांडो के अतिरिक्त भारतीय समाज के कुछ उपभोक्तावादी संस्कार भी थे, दरअसल भारतीय मेधा बहुआयामी रही है। उसने जहां विराट से लेकर शून्य तक को अपनी विचारणा का विषय बनाया, वहीं उसके चिंतन–मनन में लौकिक विषयों को लेकर चमत्कृत कर देने वाली, बहुरंगी और विविधतापूर्ण उपब्धियां भी मौजूद हैं।

स्त्रियों की वृत्ति (आजीविका) के विषय में पाराशर स्मृति में उल्लेख किया है। चार प्रकार की स्त्रियां हैं– (1) रजकी (धोबिन) (2) चर्मकारी (चर्मकर्म करने वाली) (3) लुब्धकी (पक्षियों आदि को मारने वाली) (4) वेणुवीविनी (बांस की टोकरी आदि बनाने वाली)।

'रजकी चर्मकारी च लुब्धकी वेणुजीविनी।'

बृहस्पति स्मृति में दासी का भी उल्लेख किया है।

उत्तराधिकार संबंधी सिद्धान्तों, नियमों का भी स्मृतियों में उल्लेख मिलता है। स्मृतिकारों का यह विचार था कि यदि उत्तराधिकार के न्यायोचित तथा निश्चित नियमों का निर्धारण न किया जाये तो धनसम्पत्ति का अर्जन, उपभोग और वितरण संभव नहीं हो सकता। स्मृतिकारों ने सर्वप्रथम सम्पत्ति के दो प्रकार बताये हैं– (1) स्थावर (अचल), जंगम (चल)। याज्ञवल्क्य तथा बृहस्पति स्मृति में सम्पत्ति के तीन प्रकार बताये हैं– भू (भू–खण्ड एवं गृह), (2) निबन्ध, (3) द्रव्य (चल सम्पत्ति एवं सोना चांदी)

भूयां पितामहोपात्ता निबन्धो द्रव्यमेव वा।
तत्र स्यात् सदृशं स्वाम्यं पितुः पुत्रस्य चैव हि।।

सम्पत्ति के दो भेद बताये हैं–(1) संयुक्त कुल सम्पत्ति (2) पृथक् सम्पत्ति। यदि परिवार का बुजुर्ग धन को अर्जित करते हैं तो उसमें परिवार के अन्य सदस्यों का भी अधिकार होता है। इसे कोई भी व्यक्ति अपने पिता, पितामह, प्रपितामह से प्राप्त करता है।

यत्किांचित्पितरि प्रेते धनं ज्येष्ठोऽधिगच्छति।
भागो यवीयसां तत्र यदि विद्यानुपालितः।।

संयुक्त सम्पत्ति को 'अप्रतिबन्धित दाय' भी कहा जाता है।

स्मृतिकारों का मत है कि कोई भी व्यक्ति सम्मलित परिवार का सदस्य होते हुए स्वयं विभिन्न उपायों से जो सम्पत्ति अर्जित करता है, उसे पृथक सम्पत्ति कहते हैं और इसके छः प्रकार बताये हैं–
(1) स्वयं उपार्जित धन (2) बन्धुओं या मित्रों द्वारा प्राप्त धन (3) वह सम्पत्ति जिसे बल से अर्जित करता है (4) विद्या से उपार्जित धन (5) विवाह से प्राप्त धन (6) पिता तथा माता से प्राप्त धन।
स्मृतिकारों ने एक अविभाज्य सम्पत्ति का प्रकार भी बताया है जिसके अन्तर्गत विधाधन, शौर्यधन तथा कन्याधन आता है। मनु ने कूप आदि को भी 'अविभाज्य सम्पत्ति माना है।'

वस्त्रंपत्र मलंकारं कृतान्नमुदकं स्त्रियः।
योगक्षेम प्रचारं च न विभाज्यं प्रचक्षते।।

इस प्रकार स्मृतियों में प्रतिपादित आर्थिक सिद्धान्त पूर्णतः औचित्य न्याय तथा नैतिक भित्ति पर आधारित है।
इच्छानुसार वेतन देना चाहिए।

देशं कालं च योऽतीयात् लाभं कुर्याच्च योऽन्यथा।
तत्र स्यात् स्वाभिनश्न्दोऽधिकं देयं कृतिऽधिके।।

यदि कार्य के मध्य में श्रमिक को काम से मुक्त कर दिया जाये तो मालिक से सवा गुना अधिक वेतन दिलाने का कानूनी प्रावधान है। मालिक इस स्थिति में श्रमिक को वेतन तथा सौ पण दण्डस्वरूप भुगतान करे। और यदि श्रमिक काम को बीच में ही छोड दे तो सौ पण श्रमिक पर दण्ड का विधान है।

व्यापार और वाणिज्यः– मनुस्मृति में वैश्य के जीवन निर्वाह के लिए व्यापार को साधन बताया है। नारदस्मृति में अनेक व्यक्ति मिलकर कोई व्यापार करते हैं उसे 'सम्भूयसमुत्थान' कहते हैं। संयुक्त व्यापार के लिए नियम के विषय में याज्ञवल्क्य स्मृति में लिखा है जो व्यापारी सम्मिलित होकर लाभ के लिए साझाा व्यापार करते हैं तो वे अपनी– अपनी पूंजी के अनुसार लाभ या हानि ग्रहण करें।
राजकीयकोष में आय आगम के स्त्रोत विभिन्न प्रकार के कर थे। कर के नाम पर राजा को प्रजा का शोषण करना चाहिये।
(1) बलिकर (2) शुल्क कर (3) दण्ड कर (अर्थ कर) (4) सन्तरण कर (5) पशु कर (6) श्रमजीवियों एवं शिल्पियों पर कर (7) आयकर
बलिकर राजकोष की आय का प्रमुख साधन था। यह कर जनता के उत्पादित खाद्यान्न पर लगाया जाता था तथा इसका व्यय प्रजा रक्षण कार्य में करने का निर्देश था। स्मृतियों में राजा का कृषकों से दसवां भाग आठवां तथा छठा भाग कर लेने के निर्देश दिये हैं। शुल्क कर बाजार में विक्रय के लिए लायी गयी वस्तुओं पर लगाया जाता था। वस्तुओं के विक्रय से प्राप्तआय का बीसवां भाग कर के रूप में लेने का प्रावधान हैं युद्ध तथा प्रतिकूलता होने पर यह बढा दिया था। यदि व्यापार में हानि हो तो राजा को शुल्क कर नहीं लेना चाहिए। राज्य के नियमों का उल्लंघन करने वाले व्यक्तियों को दण्ड दिया जाता था। इस दण्ड के लिये नियम था कि अपराधी के अपराध को देखकर, देश, काल को देखकर, अपराधी की आर्थिक स्थिति को समझकर ही दण्ड देना चाहिये।

अनुबन्धं परिज्ञाय देशकालौ च तत्वतः।
सारापराधो चालोक्य दण्डं दण्डेषु पातयेत्।।

बलात्कार, किसी की हल्या करने पर, ब्राह्मण को आघात पहुंचाने पर उसकी सम्पत्ति अपने अधिकार में ले ली जाती थी तथा उसे प्राणदण्ड या राज्यनिष्कासन का आदेश दिया जाता था।
अर्थ के विषय में विशद् विवेचन बृहस्पति स्मृति नारदीय स्मृति, मनुस्मृति तथा बुध स्मृति में मिलता है। स्मृतियों में कर्म के आधार पर प्राप्त होने के कारण तीन प्रकार का अर्थ बताया है –1। शुक्ल अर्थ 2। शबल अर्थ 3। कृष्ण अर्थ।

श्रेष्ठ या उत्तम कर्मों से प्राप्त होने वाला अर्थ शुक्ल अर्थ है। यह अर्थ सात प्रकार का है– (1) अर्थ विद्या (2) पुरूषार्थ (3) तपस्या (4) शिष्य (5) यज्ञ (6) वंशपरम्परा (7) कन्या से प्राप्त।
शबल अर्थ वह है जो ब्याज, कृषि, वाणिज्य, शुल्क, शिल्प और अकृत व्यक्ति से प्राप्त होता है। द्यूत, दूतकार्य, रोगी, दुःसाहसी या अन्यायी तथा ब्याज से प्राप्त धन कृष्ण अर्थ है। इस प्रकार स्मृतिकारों का मानना है कि जिस प्रकार के कर्म से अर्थ प्राप्त है उसका फल तदनुरूप ही होता है। इस प्रकार निष्कर्ष निकलता है कि स्मृतियों में न्यायोचित मार्ग से ही अर्थ अर्जन का मार्ग बताया है। बृहस्पति स्मृति में अचल सम्पत्ति के लिए स्थावर शब्द प्रयुक्त किया है और इस अचल सम्पत्ति प्राप्ति के सात स्त्रोत बताये हैं–

विद्यया क्रयबन्धेन शौर्यभागान्वयागतम्।
सपिण्डस्याप्रजस्यांशं स्थावरंसप्तधाऽऽस्यते।।

स्मृतिकारों ने भोग के योग्य सम्पत्ति के सात भेद बताये हैं– (1) पैतृक (2) लब्ध (3) क्रय (4) आधान (5) दान से प्राप्त (6) शौर्य (7) प्रवेदन। इस सम्पत्ति (अर्थ) की सफलता के लिए धन आगम के स्त्रोत भी जरूरी है। यदि धन का व्यय होता है और अर्थ का आगम न रहे तो अर्थ (सम्पत्ति) नष्ट हो जायेगी। अर्थ जीवन जीने के लिए प्रत्येक व्यक्ति के लिए अनिवार्य होता है। स्मृतियों में अर्थ की प्राप्ति धर्म के मार्ग पर चलकर प्राप्त करने का निर्देश दिया है। मनु ने अर्थागम के सात प्रकार बताये हैं–(1) दाय–पितृ संपत्ति का अंश (2) लाभ– मूलधन से प्राप्त (3) क्रय (खरीदा हुआ) (4) जय (युद्ध आदि से प्राप्त) (5) प्रयोग (व्याजादि से प्राप्त) (6) कर्मयोग (कृषि व्यापार आदि से प्राप्त) (7) सत्प्रतिग्रह– शास्त्रोक्त दान से प्राप्त।

सप्त विप्तागमा धर्मा दायो लाभः क्रयो जयः।
प्रयोगः कर्मयोगश्च सत्प्रतिग्रह एव च।।

इस प्रकार अर्थागम के विषय में स्मृतिकारों में मतैक्य है कि अर्थ की प्राप्ति के स्त्रोत शुद्ध, सात्विक, न्यायोचित तथा सत्यता की राह वाले होने चाहिए अन्यथा मानव पतन की गर्त में चला जाता है।
जीवन की गतिशीलता के लिए धन की अनिवार्यता है इसलिए धन के अर्जन के लिए प्रयास करना चाहिए। इसे वृत्ति मनुस्मृति में कहा है–

शूद्रस्तु वृत्तिमाकांगक्षन् क्षत्रमाराधयेद्यादि।
धनिनं वाप्युपाराध्य वैश्यं शूद्रो जिजीविषेत।।

मनु ने मनुस्मृति में धन प्राप्ति के साधन बताते हुए कहा है–

धनमूलाः क्रिया सर्वा यत्नास्तत्साधने मताः।
वर्धनं रक्षणं भोग इति तस्य विधिक्रमः।।

(1) धन की प्राप्ति और उसको बढ़ाना (2) प्राप्त धन की रक्षा करना। (3) प्राप्त धन का उपयोग।
मनु ने जीवन निर्वाह के लिए दस व्यापार बताये हैं– (1) विद्या (वेद, वेदांग का अध्ययन–अध्यापन) (2) शिल्प (स्वर्ण, रजत आदि धातुओं के आभूषण बनाना, काष्ठ शिल्पकार आदि) (3) भृति (वेतन के आधार पर कार्य करना) (4) सेवा (5) गौ रक्षण (6) व्यापार (7) कृषि (8) धृति (9) भिक्षा (10) सूद

विद्या शिल्पं भृतिः सेवा गोरक्ष्यं बिपगिः कृषिः।
धृति भैक्ष्यं कुसीदं च दश जीवन हेतवः।।

नारदीय मनुस्मृति में व्यापार का उल्लेख किया है – कुसीद वृत्ति (ब्याज पर रूपया देना) महापथिक (राजमार्ग के व्यापारी) सामुद्रवणिक, कुशीलव (अभिनेता) शैलूष (नट) विषजीवी (विष एवं मद्य विक्रेता) अहितुंडिक (सपेरा) कीनाश (कृषक) झल्ल (कुश्ती लडने वाला) तैलिक (तैली), शौण्डिक (मद्यविक्रेता) वर्ष नक्षत्र–सूचक (ज्योतिषी), ऐन्द्रजालिक (जादूगर), लुब्धक (वधिक) चित्रकृत (चित्रकार), मंख (स्तुति पाठक), कूटकारक (दल–प्रपंच के कार्य करने वाले), कुहक (जादूगर), तस्कर (चोर), वार्द्धषिक (ब्याज पर धन देने वाला), विषविक्रेता (मद्य एवं गांजा आदि विक्रय करने वाला), शस्त्र विक्रेता (हथियार विक्रेता), लवण विक्रेता (पंसारी), अपूप विक्रेता (हलवाई), कुलिक (कलाकार), स्तावक (भाट), दास (सेवक), नैवृतिक (जालसाजी से जीविका चलाने वाला)।
बुधस्मृति में वृत्तियों का उल्लेख है– अध्यापन याजन (पुरोहिताई) प्रतिग्रह (दान लेना), क्रय–विक्रय (व्यापार वाणिज्य), संविभाग (साझेदारी), कृषि, पशुपालन, वाणिज्य, सेवाकर्म।
श्रम– आर्थिक दृष्टिकोण से किये जाने वाला कोई भी शारीरिक तथा मानसिक कार्य श्रम कहलाता है। बिना श्रम के उत्पादन सम्भव नहीं है। श्रम को श्रमिक से अलग नहीं किया जा सकता है। श्रमिक को श्रम बेचने के लिए उत्पादन के स्थान पर जाना ही पडेगा जहां श्रम की मांग है। श्रम की मांग तथा पूर्ति में शीघ्रता से सन्तुलन स्थापित नहीं हो सकता है।
श्रमिक – मनुमृति, याज्ञवल्क्य तथा नारद स्मृति में उत्पादन के साधन श्रमिक के संबंध में विचार व्यक्त किये हैं–

उत्तमस्त्वायुधयोऽत्र मध्यमस्तु कृषीबलः।
अधमो भारवाहः स्यादित्मेष त्रिविधो भूतः।।

नारद स्मृति में श्रमिक के तीन वर्ग बताये हैं– (1) शस्त्र धारण करने वाले सैनिक आदि उत्तम।
(2) मध्यम :– कृषि विषयक कार्य करने वाले।
(3) अधम :– बोझा वहन करने वाले कुली तथा द्वारपाल। इन श्रमिकों को श्रम के बदले धन, अन्न आदि पारिश्रमिक का भुगतान किया जाता था।
श्रमिकों के प्रकारो के विषय में स्मृतिकारों में मतभेद है। मनु ने श्रमिकों के सात प्रकार बताये हैं नारद स्मृति में पन्द्रह प्रकार के श्रमिक बताये हैं–

शास्त्रे दासाः पञ्चदश स्मृताः।

स्मृतिकारों ने यह भी माना था की यदि श्रमिक के द्वारा स्वामी भक्ति से श्रम करते हुए अपने मालिक के प्राणों की रक्षा की जाती है तो मालिक द्वारा उसे पुत्रवत् अधिकार दिया जाये।

यो वैषां स्वामिनः कश्चिन्मोक्षेयत्प्राणसंशयात्।
दासत्वात्स विमुच्येत पुत्रभागं लभेत च।।

मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति, नारद स्मृति में श्रमिकों को श्रम के बदले भुगतान का प्रावधान बताया गया। नादर स्मृति में भुगतान का क्रम भी निश्चित किया है यह क्रम है आदि, मध्य और अन्त। मनुस्मृति में बताया है कि पारिश्रमिक पहले निर्धारित कर लेना चाहिए और यदि पहले निर्धारित नहीं होता है तो सहमति से काल, स्थान एवं उद्देश्य के अनुसार निर्धारित करना चाहिए। यदि वेतन के तय नही होने की अवस्था श्रमिक द्वारा व्यापार में लाभ करवा दिया जाये तो इसे अधिक वेतन देना चाहिए और यदि हानि करवा दे तो उसे निर्धारित अवधि में ही होना चाहिए। स्मृतिकार मनु ने निर्दिष्ट किया है कि राजा को प्रजाहितार्थ अनेक योजनाओं का क्रियान्वयन करना चाहिए।
स्मृतिकाल में मुद्रा व्यवस्था पर सजा का ही पूर्णाधिकार सोना, चांदी, तांबा आदि मुद्राओं का प्रचलन था। याज्ञवल्क्य स्मृतिकार के अनुसार सोलह रूपयमाष का एक धरण होता है। दस धरणों को एक सौ मान वाला पल होता है। चार सुवर्णों का एक निवक होता है। सौलह रोप्यमाषकों का एक –रौप्यवरण' तथा दो कृष्णल (का एक) चांदी का माष होता है।

शतमानं तु दशभिर्धरणैः पलमेवतु।
निष्कं सुवर्णाश्वत्वारः कार्षिकस्तामिकः पणः।।

एक कर्प (पल का चतुर्थांश) के बराबर ताम्र का ताम्र का सिक्का पण होता है। इस प्रकार स्मृतिकारों ने अनेक प्रकार की मुद्राओं तथा उनका मापन विषयक ज्ञान दिया है।

स्मृतियों में विनिमय, साझेदारी, संविदा आदि से संबंधित अनेक प्रकार सिद्धान्तों का निर्देश है। चल–अचल सम्पत्ति के विक्रय या हस्तान्तरण के निश्चित नियम थे। विभिन्न अंशभागी पूंजी से लगाये हुए व्यापार तथा सार्वजनिक क्षेत्र दोनों तरह के व्यापार संचालित थे। विनियम के लिए मनु ने क्रय विक्रयानुशय तथा याज्ञवल्क्य ने विक्रीयासम्प्रदान और नारद ने विक्रीयासमादान और क्रीत्वानुशय का उल्लेख किया है। स्मृतिकारों ने सम्पत्ति के दो भेद बताये हैं (1) चल सम्पत्ति और (2) अचल सम्पत्ति। सम्पत्ति के विनिमय के विषय में मनुस्मृतिकार ने कहा है कि कोई भी वस्तु क्रय या विक्रय करने के उपरान्त पश्चाताप होने पर दस दिनों के भीतर वस्तु वापस ली या दी जा सकती है।

क्रीत्वा विक्रीय वा किंचिद्यस्येहानुशयो भवेत्।
सोऽन्तर्दशाहात्तद्रव्यं दद्याश्चैवाददीत वा।।

विनिमय की शर्तों की पालना न होने पर दोनों पक्षों के लिए दण्ड का भी प्रावधान है–

परेण तु दशाहस्य न दद्यान्नपि दापयेत्।
आददानो ददश्चेव राज्ञा दण्डयः शतामि षट्।।

दस दिन के बाद न लिया जाये न दिया जाये। एक दिन के बाद वस्तु के विनिमय करने वाले को राजा छः सौ पण दण्ड करे। यदि वस्तु के विनिमय करने में किसी भी पक्ष के द्वारा यर्थाथता को छुपा कर विक्रय किया जाता है इस स्थिति में स्मृतिकारों ने दो गुना दण्ड का निर्देश दिया है।

नदी–नालों को पार करते समय सन्तरण कर दिया जाता था। नदी–नालों को पार करते समय खाली गाडी का एक पण, एक मन का आधा पण, गौ आदि पशु का चौथाई पथ और भाररहित मनुष्य का आठवां भाग सन्तरण कर के रूप में लिया जाता था।

पणं मानं तरे दाप्यं पौरूपोऽर्धपणं तरे।
पादं पशुश्च योषिच्च पदार्थ रिक्तकः पुमान्।

पशुओं के व्यापारकर्ता पर पशु कर लगाया जाता था। इसमें पशुओं के लाभ का कुछ अंश कर के रूप में राजकोष में संचित किया जाता था। पशु व्यापारी को लाभ का पचासवां भाग पशु कर के रूप में देना पड़ता था। शिल्पी, श्रमजीवी आदि से राजा द्वारा कर लिया जाता है। यह कर धन के रूप में न लिया जा कर श्रम के रूप में लिया जाता है। आयकर राजकोष की आय का महत्वपूर्ण श्रोत है। आयकर समस्त खनिज सोना चांदी तांबा आदि समस्त धातुओं तथा प्रकृति प्रदत्त वस्तुओं जैसे पुष्प, फल, मधु आदि से लिया जाता है। राजा के द्वारा स्वदेशी वस्तुओं पर दसवां भाग तथा आयातित वस्तुओं पर बीसवां भाग शुल्क कर के रूप में ले।

राजा के द्वारा यह कर निर्धारित नियमों के आधार पर ही लिया जाना चाहिये। राजा के द्वारा राजकोष में कर के रूप में जो धन लिया जाता है उस का उपयोग प्रजा की रक्षा तथा प्रजाहित में राज्य के विकास में किया जाना चाहिए। राजा प्रजा से कर लेकर राज्य की रक्षा करता है, प्रजा को आपदाओं से बचाता है। जैसे राजा के आय के अनेक स्त्रोत थे इसी के साथ ही साथ व्यय के भी अनेक मार्ग थे। प्रजा के अधिकारों की रक्षा के लिए न्याय व्यवस्था के क्षेत्र में दण्ड द्वारा प्राप्त धन और व्यापार एवं व्यवसाय के क्षेत्र में प्रजा के हितों की रक्षा के लिए आय का व्यय होना चाहिए। सैन्य व्यवस्था को सुदृढ रखने के लिए सैनिकों की नियुक्ति होती थी उनके वेतन पर धन व्यय होता था। अनाथ, साधु, विकलांग आदि जो भी श्रम कराने में असमर्थ रहते थे उनके भरणपोषण में व्यय होता था। राज्य के सुव्यवस्थित संचालन के लिए मन्त्रियों, दूतों की नियुक्ति उच्च अधिकारियों की नियुक्ति की जाती थी जिसमें बहुत व्यय होता था। इस प्रकार कर के रूप में राजकोष में प्राप्त आय का अधिकांश भाग प्रजा की रक्षा की व्यवस्था, राज्य व्यवस्था, सैनिक व्यवस्था तथा वेतन आदि पर होता था।

भारतीय वाङ्मय में स्मृतियों का महत्वपूर्ण स्थान है। इनमें तत्कालीन समाज के आधार–व्यवहार पर न केवल गंभीर चिंतन है बल्कि इसकी मौलिक गवेषणा के साथ–साथ जीवनके लिए उनकी अपरिहार्यता स्वतः सिद्ध होती है।

वेद श्रुति है और स्मृतियां धर्मशास्त्र हैं। सभी विषयों में इनकी प्रमाणिकता असंदिग्ध है। स्मरण परम्परा से ही स्मृति शास्त्रीय नियमों, परम्पराओं एवं आचार संहिताओं का जीवन्त है। स्मृति प्राचीन परम्पराओं एवं आचारशास्त्र का मूर्तरूप है। स्मृतियों की संख्या के विषय में परस्पर मतभेद है। लेकिन संप्रति उपलब्ध स्मृतियों की संख्या 44 है। स्मृति ग्रन्थ विभिन्न विषयों की आचार संहिता है। श्रुतियों वेदों का विशद् रूप है जिसका उल्लेख वेदों में संक्षेप में है उसका विस्तृत विवेचन स्मृतियों में है।

श्रुतेस्विार्थं स्मृतिरन्वगच्छत्

स्मृतियों से प्राचीन भारतीय अर्थव्यवस्था का वृहत् ज्ञान प्राप्त होता है। भारत की समस्त आर्थिक स्थितियों का समग्र चिन्तन स्मृतियों में है। इस प्रकार स्मृतियां पुरूषार्थ चतुष्ट्य के धर्म, काम तथा मोक्ष के साथ अर्थ को सिद्ध कर मानव जीवन को चरितार्थ करती हैं।

श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः।
ते सर्वाथेष्वमीमांस्ये ताभ्यां धर्मो हि निर्बभौः।।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. बुधस्मृति
2. बृहस्पति स्मृति 13।13।37
3. विष्णु स्मृति 16।8
4. मनुस्मृति 10।79
5. गौतम स्मृति 7।8।14
6. मनुस्मृति 10।116
7. मनुस्मृति 10।116
8. याज्ञवल्क्य स्मृति 3।39
9. वशिष्ठ धर्म सूत्र 2।24।29
10. नारद स्मृति 6।1
11. बिल्ब धर्म सूत्र 3।22
12. शुक्रस्मृति 4।2।10
13. अर्थशास्त्र 7।5 पृ। 276–277
14. रघुवंश 1।8
15. व्यास स्मृति 2 पृ।22।20
16. याज्ञवल्क्य स्मृति 2।255
17. नारद स्मृति 11।6
18. मनुस्मृति 7।129